|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 3: कर्मयोग

1/3 (श्लोक 1-12), शनिवार, 24 जनवरी 2026

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/mYqo-Ar3cBs

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत

मधुर मधुराष्टकम्, गीता परिवार गीत, हनुमान चालीसा, दीप प्रज्वलन के पश्चात आज के सत्र का आरम्भ हुआ। सद्गुरु की कृपा से उनके चरणों में नतमस्तक होते हुए इस अध्याय का आरम्भ हुआ।

वसन्त-पञ्चमी के अवसर पर माँ सरस्वती की आराधना करते हुए नमन करते हैं। उनकी कृपा से सभी के जीवन में ज्ञान का प्रकाश आए। सबका जीवन ज्ञानमय हो जाए। ज्ञान सर्वोपरि है। यह अथाह है, इसकी गहराई नापना सम्भव नहीं है। यह अध्याय भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह कर्मयोग कहलाता है।

परम श्रद्धेय लोकमान्य तिलक जी को अंग्रेजों की सरकार ने कालेपानी की सजा दी थी। तब माण्डले के कारागृह में कर्मयोग पर ही उन्होंने यह महत्त्वपूर्ण रहस्य लिखा था। यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

इस अध्याय में प्रवेश करने के पूर्व हम लोग इसके पहले वाले अध्याय का चिन्तन करेंगे। प्रथम अध्याय में दोनों सेनाएं कुरुक्षेत्र में आमने-सामने खड़ी थीं। ऐसे समय में जब अर्जुन ने कहा कि हे केशव! मेरा रथ दोनों सेनाओं के मध्य भाग में ले चलिएगा। मैं दोनों सेनाओं का निरीक्षण करना चाहता हूँ।

यावदेतान्निरीक्षेऽहम्, योद्धुकामान्वस्थितान्,
कैर्मयासह योद्धव्यम्स्मिन् रणसमुद्यमे।।
1·22

कौन मेरे सामने हैं जिनसे मुझे युद्ध करना है, मैं जानना चाहता हूँ। श्रीभगवान् ने दोनों सेनाओं के मध्य में रथ स्थापित कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ के सारथि हैं जिन्हें अर्जुन ने ही माँगा। जब श्रीभगवान् ने दो विकल्प दिए थे-

एक ओर एक अक्षोहिणी नारायणी सेना
और दूसरी ओर निःशस्त्र श्रीभगवान् स्वयं।

अर्जुन ने तुरन्त ही कहा कि भगवान् मुझे आप चाहिए तभी मैं युद्ध करूँगा।

युद्ध क्षेत्र में महाबाहु अर्जुन स्वजनों को देखकर हतोत्साहित और विषादग्रस्त हो गए। विषाद की स्थिति में जब हम श्रीभगवान्

को पुकारते हैं तो उनसे हमारा सम्बन्ध जुड़ जाता है, इसी को योग (जुड़ना) कहते हैं। अतः यह विषादयोग हुआ। अर्जुन धर्म के लिए रो रहे थे। अर्जुन स्वजनों के लिए रो रहे थे, स्वयं के लिए नहीं।

जब तक हम अर्जुन के विषाद का मनोविज्ञान नहीं समझेंगे, तब तक हमें गीता जी के शाश्वत ज्ञान का सही-सही आकलन नहीं हो सकता। अर्जुन नरोत्तम हैं, सर्वश्रेष्ठ धर्नुधारी हैं। उन्होंने अनेक युद्ध लड़े हैं और विजय प्राप्त की है, तब भी कैसे उन्हें स्वजनों का मोह छटपटा रहा है? इसका कारण सञ्जय के माध्यम से धृतराष्ट्र के द्वारा बुद्धि परिवर्तन करना ही था। सज्जन व्यक्तियों से ही कहा जाता है कि आप सज्जन हैं, आप युद्ध न करें। बस समझ लीजिये कि ऐसे आतङ्कवादियों के साथ नहीं लड़ना है। तब सज्जन शक्ति क्षीण होती जाती है और उन पर दुर्जन हावी हो जाते हैं, उन पर राज करते हैं।

सज्जन शक्ति सङ्गठित और सशक्त होनी चाहिए।
यही विश्व का कल्याण करेगी।

अर्जुन समझ रहे हैं कि यह युद्ध उनकी राज्य प्राप्ति के लिए हो रहा है।ज्ञानेश्वर महाराज ने अर्जुन के मन की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है-

तैसे राज्यभोगसमृद्धि । उज्जीवन नोहे जीव बुद्धि।
एथ जिव्हाळा कृपानिधि । कारुण्य तुझें ॥

वे कहते हैं कि मात्र राज्य भोग से मेरे जीवन का उन्नयन नहीं होगा, क्योंकि कितने भी भोग प्राप्त कर लें, मनुष्य देह बुध्दि से लिप्त होकर और अधिक चाहता है।
ये दिल माँगे more, इससे उसकी जीव बुद्धि जागृत नहीं होती और परमात्मा उससे बिछड़ जाते हैं। अर्जुन कहते हैं कि भगवन् मैंने आपको प्राप्त किया है, युद्ध लड़ने के बाद मैं आपसे ही बिछड़ जाऊँगा। आप मुझसे दूर हो जाएंगे। यह अर्जुन का स्वयं के लिए विश्लेषण है।
श्रीभगवान् अर्जुन की मानसिक स्थिति पहचानते हैं और उनका मनोबल बढ़ाते हैं।

मन के हारे हार है मन के जीते जीत।

श्रीभगवान् कहते हैं कि मानसिक स्तर पर भूमिका को बदलना है कि यह कार्य स्वयं के लिए नहीं वरन् अपना कर्त्तव्य समझ कर करो। जो युद्ध अन्याय के विरुद्ध स्वयं तुम्हें प्राप्त हुआ है, उस युद्ध को करना तुम्हारा क्षत्रिय कर्त्तव्य है। यही तुम्हें परमात्मा प्राप्ति के लिए माध्यम बनेगा।

अर्जुन श्रीभगवान् की बात से भ्रमित हो जाते हैं। श्रीभगवान् अर्जुन की तीव्र देह बुद्धि को शिथिल करना चाहते हैं और तब आत्म बुद्धि में ले जाना चाहते हैं। श्रीभगवान् आत्मा के स्वरुप के बारे में भी बताते हैं कि इसे कोई जला नहीं सकता, सुखा नहीं सकता, मार नहीं सकता या भिगो नहीं सकता। यह हमने दूसरे अध्याय में पढ़ा है-

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं, भूत्वाऽभविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।
2·20

यह आत्मतत्त्व शाश्वत है। इसे कोई मार नहीं सकता। यह कभी जन्म नहीं लेता और न ही इसकी मृत्यु होती है। जिन्होंने अपने आत्मतत्त्व के स्वरुप की प्राप्ति की, ऐसे **स्थितप्रज्ञ** के लक्षण दूसरे अध्याय के अन्तिम अट्ठारह श्लोकों में श्रीभगवान् बताते हैं।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।
2·72

श्रीभगवान् कहते हैं कि जिसने उस ब्रह्मतत्त्व की प्राप्ति की और ब्रह्म के साथ अपनी एकात्मकता की, अपने स्वरुप की पहचान की, ऐसा आत्मज्ञानी मनुष्य मृत्यु के समय भी मोहित नहीं होता और वह निर्वाण की प्राप्ति कर लेता है।

अर्जुन सोचते हैं कि एक ओर श्रीभगवान् मुझे युद्ध छोड़ने भी नहीं दे रहे और दूसरी ओर कह रहे हैं कि तुम उठो, अपना धनुष-बाण उठाओ। यदि तुम्हारी मृत्यु हुई तो तुम्हें स्वर्ग मिलेगा और यदि तुम्हे विजय प्राप्त हुई तो तुम्हें इस पृथ्वी का राज्य मिलेगा।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय, युद्धाय कृतनिश्चयः॥
2·37

मनुष्य अपना कर्त्तव्य करने से जीत को ही प्राप्त होता है। श्रीभगवान् का यह उपदेश अर्जुन समझ नहीं पाते। कभी-कभी मनुष्य अपनी मनोबुद्धि से अपने परिणाम स्वयं ही निश्चित करता है। अर्जुन हमारे ही प्रतिनिधि हैं। एक बार हम ऐसी मानसिक स्थिति में आ गए और हमने यह निर्णय कर लिया कि यह मेरे लिए अच्छा नहीं है तो हम उसके कारण की मीमांसा देने लगते हैं कि यह मेरे लिए करना अच्छा नहीं है। इसी प्रकार अर्जुन कारण मीमांसा दे रहे थे कि श्रीभगवान् उन्हें युद्ध छोड़ने नहीं देना चाहते परन्तु अन्ततोगत्वा श्रीभगवान् आत्मज्ञानी मनुष्य का पूरा विवरण कर देते हैं। तब अर्जुन कहते हैं-
"मैं यही तो चाहता हूँ। मुझे आत्मज्ञान और शान्ति चाहिए।"
।ब्रह्मनिर्वाण मृच्छति।

युद्धभूमि में भी कभी शान्ति मिलती है क्या? कुरुक्षेत्र में मिलती है क्या?
कुरु-करना
क्षेत्र-area
हमारे शरीर का एक कर्मक्षेत्र होता है-कुरुक्षेत्र। यह कुरुक्षेत्र अत्यन्त सङ्घर्ष पूर्ण होता है। वहाँ सङ्घर्ष ही सङ्घर्ष होता है और सङ्घर्ष में कभी शान्ति प्राप्त हो सकती है क्या? अर्जुन कहते हैं कि मैं तो युद्ध छोड़ना चाहता हूँ और आप मेरी समस्या उलझा रहे हैं। मैं तो आपकी शरण में आया था।

शरण में आना ही तो अन्तरङ्ग में प्रवेश करने की चाबी है। जो भगवद्गीता की शरण में आ जाता है, उसके लिए सभी रहस्य प्रकट हो जाते हैं।अब अर्जुन कहते हैं कि भगवन्! आप एक बार तो आत्मज्ञान की प्रशंसा करते हैं और एक बार कहते हैं-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥
2·47

अर्थात् आप कर्म की प्रशंसा करते हैं और दूसरी ओर आप कहते हैं-

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय।
बुद्धो शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।।
2·49

ज्ञानयोग से कर्म निचले स्तर पर है। मुझे निश्चित करके बताइये कि मेरे लिए क्या सही है?

3.1

अर्जुन उवाच
ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते, मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं(ङ्) कर्मणि घोरे मां(न्), नियोजयसि केशव॥3.1॥

अर्जुन बोले - हे जनार्दन! अगर आप कर्म से बुद्धि (ज्ञान) को श्रेष्ठ मानते हैं, तो फिर हे केशव! मुझे घोर कर्म में क्यों लगाते हैं ?

विवेचन- भगवद्गीता प्रवचन नहीं है, यह कुरुक्षेत्र में किया गया एक संवाद है। यह हमें अपने जीवन को आनन्दमय बनाने का पाथेय प्रदान करता है।

यहाँ अर्जुन ने श्रीभगवान् के लिए दो सम्बोधन प्रयुक्त किये हैं। एक है जनार्दन और दूसरा केशव। इसका कारण है कि जब कोई किसी को व्याकुल हो कर पुकारता है तो दो बार नाम लेता है। उसी प्रकार अर्जुन भी व्याकुल हो रहे हैं और छटपटा रहे हैं। वे कहते हैं कि हे केशव! आप कह रहे हैं कि बुद्धि या ज्ञान कर्म से अधिक श्रेष्ठ है तो आप घोर युद्ध के लिए मेरा नियोजन क्यों कर रहे हैं। गुरु या माता-पिता जिनकी शरण में हम आये हैं, वे वही बातें बताते हैं जिसमें हमारा श्रेय होता है और आप मुझे उलझा रहे हैं।

3.2

व्यामिश्रेणेव वाक्येन, बुद्धिं(म्) मोहयसीव मे।
तदेकं(वँ) वद निश्चित्य, येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥3.2॥

(आप अपने) मिले हुए से वचनों से मेरी बुद्धि को मोहित-सी हो रही है। (अतः आप) निश्चय करके उस एक बात को कहिये, जिससे मैं कल्याण को प्राप्त हो जाऊँ।

विवेचन- अर्जुन कहते हैं कि भगवन् आप निश्चित करके एक बात कहिये जिससे मेरा कल्याण हो। हे केशव! मेरे कल्याण का मार्ग प्रशस्त करिये। एक बार ज्ञान की प्रशंसा और एक बार कर्म की प्रशंसा, इन दो प्रकार की मिश्रित बातों से आप मेरी बुद्धि को मोहित कर रहे हैं। अर्जुन की इच्छा है कि जो मैंने मनोनीत किया है वही बात श्रीभगवान् के मुख से आये।

एक बार एक चिकित्सक के पास एक माता-पिता अपने बच्चे को लेकर आते हैं और कहते हैं कि हम चाहते हैं कि हमारा बेटा चिकित्सक बने। आप उसे अपने परामर्श से उसके मस्तिष्क में यह बात भर दीजिये। वे अपने मन की बात सामने वाले व्यक्ति से कहलवाना चाहते हैं। इसी प्रकार मनुष्य अपने माता-पिता या गुरु से अपने मन की बात ही सुनना चाहते हैं, मैंने जो निर्णय लिया है वही बात इनके मुख से आ जाए। यही स्थिति अर्जुन की भी है।
अब अर्जुन श्रीभगवान् से श्रेय की बात करते हैं।

दो प्रकार की बातें होती हैं-
श्रेयस्
प्रेयस्

जैसे मिठाई हमें प्रिय है, उसे खाने के लिए हमें किसी से पूछना नहीं पड़ता, परन्तु हमें शकर की बीमारी (डायबिटीज) है तो मिठाई का सेवन हमारे लिए श्रेयस् है या नहीं यह चिकित्सक ही बताएगा। श्रेष्ठ व्यक्ति अपना श्रेयस ही पूछते हैं। इसी भाँति भगवद्गीता सभी के श्रेयस की बात करती है और प्रत्येक व्यक्ति का श्रेयस उसकी प्रकृति, सङ्गोपन (पालन पोषण) पर आधारित होगा। प्रत्येक व्यक्ति का श्रेयस भिन्न-भिन्न होता है।
अर्जुन ने प्रथम अध्याय में ही कह दिया था-

।।न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे॥

पहले तो अर्जुन ने पाण्डित्यपूर्ण बातें की हैं। स्वजनों की हत्या करने में मुझे कोई श्रेय दिखाई नहीं देता। परन्तु बाद में अर्जुन ने श्रीभगवान् को अपने गुरु के स्थान पर विराजित किया और कहा-

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः,पृच्छामि त्वां धर्म सम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे, शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।।

हे भगवन् ! मेरी वीर वृत्ति करुणा से ढक गयी है। अब मैं अपना श्रेय समझ नहीं पा रहा हूँ। मैं आपका शिष्य हूँ। मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मुझे उपदेश कीजिये। इसके पश्चात् ही दूसरे अध्याय के ग्यारहवें श्लोक से श्रीभगवान् के मुखारविन्द से शाश्वत ज्ञान की धारा प्रवाहित हुई और उन्होंने **स्थितप्रज्ञ** के लक्षण बताये।

ज्ञानेश्वर महाराज ने श्रीभगवान् और अर्जुन दोनों के मनोभाव ज्ञानेश्वरी में अत्यन्त सुन्दर रूप से समाहित किये हैं। अर्जुन पूछते हैं-

मी आधींचि कांहीं नेणें । वरी कवळिलों मोहें येणें ।
श्रीकृष्णा विवेकु याकारणें । पुसिला तुज ॥

मेरी बुद्धि मोहित हो गयी है और मैं मोह से छटपटा रहा हूँ।

कृष्णा विवेकु या कारणें । पुसिला तुज ॥
अर्थात् मैं आपसे विवेक चाहता हूँ।

भगवद्गीता के दो मुख्य स्वर हैं-
भगवद् भक्ति
विवेक की प्राप्ति
विवेक अर्थात् क्या करना चाहिए क्या नहीं, इसका आकलन करने की सही शक्ति।
मनुष्य द्वन्द्वों में रहता है। विवेक की जागृति ही भगवद्गीता का मुख्य स्वर है। कबीरदास जी कहते हैं-
कहै कबीर मैं सो गुरु पाया, जाका नाम बिबेको"

इसका अर्थ है कि उन्होंने उस 'विवेक' रूपी सच्चे गुरु को पा लिया है जो आत्मज्ञान और सही-गलत की समझ देता है।

मी आधींचि कांही नेणें । वरी कवळिलों मोहें येणें ।
कृष्णा विवेकु या कारणें । पुसिला तुज ॥

तंव तुझी एकेकी नवाई । एथ उपदेशामाजीं गोवाई ।
तरी अनुसरलिया काई । ऐसें कीजे ॥

हे भगवान्! मैं आपकी शरण में आया, मैंने आपसे पूछा मेरे लिए क्या श्रेयस्कर है, और आप ही मेरे साथ खेल कर रहे हैं । जो आपके चरणकमलों पर आश्रित रहना चाहता है, उसके साथ ऐसा किया जाता है क्या? उसके साथ इस प्रकार से मिश्रित वाक्यों से समाधान दिया जाता है क्या? भगवन् निश्चित करके एक ही बात बताइयेगा जिससे मैं अपने जीवन में श्रेयस प्राप्त कर लूँ।

जो अपने विचारों में उलझा हुआ रहता है उसके कर्ण सुनते नहीं हैं। उसके अन्दर विचारों का कोलाहल होता है। ऐसे व्यक्ति को पहले डाँटना पड़ता है।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ, नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं, त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।।
2·03

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं, हे पार्थ! नपुंसकता (कायरता) को मत प्राप्त हो; यह तुम पर शोभा नहीं देता। हे शत्रु-तापदायक! हृदय की इस तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर उठो और युद्ध करो।

3.3

श्रीभगवानुवाच
लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा, पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां(ङ्), कर्मयोगेन योगिनाम्॥3.3॥

श्रीभगवान् बोले - हे निष्पाप अर्जुन! इस मनुष्यलोक में दो प्रकार से होने वाली निष्ठा मेरे द्वारा पहले कही गयी है। (उनमें) ज्ञानियों की (निष्ठा) ज्ञानयोग से और योगियों की (निष्ठा) कर्मयोग से (होती है)।

विवेचन- श्रीभगवान् अर्जुन को **अनघ** कहकर सम्बोधित करते हैं। अनघ का अर्थ है-जिसके मन और जीवन में कोई पाप न हो। जिसने कभी किसी का बुरा नहीं चाहा हो। श्रीभगवान् कहते हैं कि मैंने इससे पहले भी दो निष्ठाओं का वर्णन किया है।

ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां(ङ्), कर्मयोगेन योगिनाम्॥
3:3

साङ्ख्य शब्द का अर्थ है- ज्ञान। इस दर्शनशास्त्र के प्रणेता कपिलमुनि हैं। वे बताते हैं कि प्रकृति और पुरुष दोनों के संयोग से सृष्टि का कार्य चलता है।
परन्तु यहाँ श्रीभगवान् कहते हैं कि दो प्रकार की मनोवृत्तियाँ होती हैं। **ज्ञानयोगी और कर्मयोगी।**

कुछ लोग विचार प्रधान होते हैं, जिनका मन ध्यान, पूजा में लगता है। वे पुस्तकें पढ़ते हैं। ज्ञान अर्जन करने में मन लगता है। वे बुद्धि का आश्रय लेते हुए तत्त्वों को खोजते हैं। ऐसे लोगों के लिए ज्ञानयोग है।

दूसरे लोग कर्मयोगी होते हैं। ये क्रिया प्रधान होते हैं। **ये अपनी कर्मेन्द्रियों से जीते हैं।** उनके लिए बैठने से कार्य नहीं होता। यदि उनसे कहें कि विवेचन सुनिए तो वे बैठकर पूरा विवेचन सुन नहीं सकते। ऐसे लोग विवेचन लिख सकते हैं, अनुवाद कर सकते हैं, group coordinator या tech बनते हैं। उन्हें क्रिया चाहिए। ये कर्म प्रधान होते हैं और ऐसे लोगों के लिए कर्मयोग है।

परन्तु हे अर्जुन! उस परमात्म तत्त्व तक, आत्मज्ञान तक, उस निश्रेयस् तक, उस मनुष्य जीवन के अन्तिम कल्याण तक, उस परमात्म प्राप्ति तक पहुँचने के ये दो मार्ग हैं।
ज्ञानेश्वर महाराज अर्जुन के लिए कहते हैं-

तू सुमनु शुद्ध मति, अनिंदकु अनन्यगति।

तुम्हारी मति शुद्ध है। तुम किसी की निन्दा नहीं करते। तुम शरण में आना जानते हो। इसलिए मैं तुम्हें बता रहा हूँ कि अपनी-अपनी वृत्ति और स्वभाव के अनुसार मनुष्य को चुनना है कि उसे कौन से मार्ग से जाना है। पहुँचने का गन्तव्य एक ही है। जैसे हमें यहाँ से दिल्ली जाना है। मार्ग अलग-अलग होंगे। एक हवाई मार्ग है, एक सड़क मार्ग है और एक रेल का मार्ग है। कोई चल कर भी जा सकता। हमें अपनी क्षमता और स्थिति के अनुसार मार्ग चुनना होगा। स्वामी शङ्कराचार्य जी ने सम्पूर्ण भारत की पदयात्रा की। वे कन्याकुमारी से लेकर बद्रिकाश्रम तक गए।

औषधि की दुकान पर अनेक दवाइयाँ रखी रहती हैं। परन्तु सभी दवाइयाँ हमारे लिए उपयोगी नहीं होतीं। अपने रोग, पीड़ा या समस्या के लिए ही हम वहाँ से दवाइयाँ लेकर आते हैं। इसी प्रकार भगवद्गीता में अनेक मार्ग बताये गए हैं।

ज्ञानयोग
कर्मयोग
भक्तियोग
आत्मसंयमयोग
संन्यासयोग
क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग

ये सभी श्रीभगवान् से जुड़ने के मार्ग हैं। हमें इनमें से अपनी रुचिनुसार चयन करना पड़ता है।

गोंधवलेकर महाराज महाराष्ट्र के महान सन्त जिन्होंने नाम-जप की महिमा गायी, उन्होंने कहा कि नाम की बहुत महिमा है और नाम-जप से ही हम लोग परमात्मा तक पहुँच सकते हैं। नाम का दीपक ही अपनी जिह्वा पर लगाना चाहिए। यही उनका उपदेश था जो हमें अन्दर भी प्रकाश देता है और बाहर भी प्रकाश देता है। एक बार वे मन्दिर में ध्यान की आराधना सिखा रहे थे और वहाँ सब लोग जप कर रहे थे। वहाँ निर्माण का कार्य चल रहा था। निर्माण कार्य कर रहे मजदूर लोग आपस में बात कर रहे थे कि देखो ये लोग कितने सौभाग्यशाली हैं कि ये बस बैठे हैं और बैठे-बैठे भजन करते हैं। हम लोग तो धूप में कैसे तप रहे हैं और कष्ट पा रहे हैं। महाराज ने यह सुना तो उन्होंने उन मजदूर को बुलाया और पूछा कि उन्हें कितनी मजदूरी मिलती है। मजदूर ने बता दी। तब महाराज ने कहा कि मैं तुम्हें इससे दोगुनी मजदूरी दूँगा परन्तु तुम्हें यहाँ बैठकर चार घण्टे माला फेरनी है और फिर भोजन करना है और तदुपरान्त चार घण्टे माला फेरनी है। मजदूर प्रसन्न हो गए कि उन्हें कुछ नहीं करना पड़ेगा। महाराज ने माला दे दी। अगले दिन वो माला करने लगे। कुछ देर तो उन्हें बहुत अच्छा लगा। परन्तु थोड़ी देर बाद ही वो पत्थर तोड़ने वाले माला नहीं फेर सके। उन्होंने महाराज को माला लौटा दी कि यह काम हमसे नहीं हो सकेगा। हमारे लिए तो वही काम ठीक है। हर व्यक्ति हर काम के लिए अनुकूल नहीं होता।

श्रीभगवान् कहते हैं कि मैंने दो मार्ग बताये हैं, अब इनमें से मनुष्य को स्वयं ही चयन करना पड़ेगा।

हे अर्जुन! ये कर्मयोग ऐसा है कि अन्तिम साँस तक छूटता नहीं है। इस सृष्टि में आये हैं, यह हमारी कर्मभूमि है। साँस लेना भी कर्म ही है।

3.4

न कर्मणामनारम्भान्, नैष्कर्म्यं(म्) पुरुषोऽश्नुते।
न च सन्न्यसनादेव, सिद्धिं(म्) समधिगच्छति॥3.4॥

मनुष्य न तो कर्मों का आरम्भ किये बिना निष्कर्मता का अनुभव करता है और न (कर्मों के) त्याग मात्र से सिद्धि को ही प्राप्त होता है।

विवेचन- अर्जुन की मनोदशा समझना आवश्यक है। यदि अर्जुन को श्रीभगवान् अनुमति देते कि तुम युद्ध छोड़कर जाओ और संन्यास लेकर आराधना करो, तप करो, तो अर्जुन कितनी देर तक बैठ सकते थे? अर्जुन रजोगुणी हैं, क्रिया प्रधान हैं। ऐसे समय में उनका मन युद्धभूमि में ही रहता। हाथ से माला फेरकर भी उनका मन वहीं रहता कि मेरे भाई जीत रहे हैं अथवा नहीं।

नैष्कर्म्यं- न कुछ करना है, न पाना बचा बचा है और न ही कुछ जानना बचा है।

कृत- कर्त्तव्य, ज्ञात -ज्ञातव्य , प्राप्त- प्राप्तव्य-
जो प्राप्त करना है कर लिया, जो जानना है जान लिया, जो भी कर्म करना है कर लिया। ऐसी अवस्था आ जाती है कि जो काम हमें करना था कर लिया। आठ घण्टे में काम करना था, तीन घण्टे में ही कर लिया। अब मुझे कुछ करना नहीं है। इसे कहते हैं **नैष्कर्म्यं** की अवस्था। इस अवस्था को पाने के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है। बिना कुछ किये यह अवस्था प्राप्त नहीं होती। श्रीभगवान् कहते हैं कि कर्म का आरम्भ किये बिना सिद्धि प्राप्त नहीं होती। सिद्धि का अर्थ है- अन्तिम पड़ाव, दुःखों से मुक्ति। मनुष्य जन्म में दुःखों से मुक्ति प्राप्ति के लिए कुछ करना पड़ेगा तब नैष्कर्म्यं की अवस्था प्राप्त होगी, कि अब कुछ करना आवश्यक नहीं है।

न च सन्न्यसनादेव, सिद्धिं(म्) समधिगच्छति॥

अर्थात केवल कर्म का, संन्यास का त्याग। (केवल कर्म का त्याग करने से नैष्कर्म्यं की स्थिति प्राप्त नहीं होगी)

अर्जुन को (युद्ध) कर्म छोड़कर सिद्धि चाहिए। श्रीभगवान् कहते हैं कि कर्म छोड़कर उसका मन से चिन्तन करना, मिथ्याचार है। इस सृष्टि में आया हुआ मनुष्य एक क्षण भी बिना कर्म किये हुए नहीं रह सकता। सोना, विश्रान्ति लेना भी कर्म है।

3.5

न हि कश्चित्क्षणमपि, जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः(ख्) कर्म, सर्वः(फ्) प्रकृतिजैर्गुणैः॥3.5॥

कोई भी (मनुष्य) किसी भी अवस्था में क्षणमात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता; क्योंकि (प्रकृति के) परवश हुए सब प्राणियों से प्रकृति जन्य गुण कर्म करवा लेते हैं।

विवेचन- कर्म करते हुए उसके परिणामों से स्वयं को मुक्त करना ही नैष्कर्म्य की स्थिति है जो मानसिक है। ज्ञानी व्यक्ति प्रति क्षण कर्म में रत होता है।

जनार्दन महाराज कुछ न कुछ कर्म में रत रहते थे। अपनी फटी हुई चादर को भी स्वयं सीते थे।
बहिरङ्ग में कर्म और अंतरङ्ग में नैष्कर्म्य की अवस्था-
यह मानसिक स्थिति है।

कोई भी व्यक्ति जो इस कर्मभूमि में आया है वह बिना कर्म के नहीं रह सकता। विवेचन करना और सुनना भी कर्म है।

प्रकृतिजैर्गुणैः-
अर्थात प्रकृति से उत्पन तीन (सत्त्व, रज और तम) गुणों से जो बँधा है।
गुण का अर्थ संस्कृत में होता है रस्सी,
दूसरा अर्थ गुणधर्म
तीन गुण; ज्ञान का प्रकाश (सत्त्व), क्रियाशीलता (रज) और क्रियाशून्यता (तम) हमें बाँधते हैं।
इन तीन रस्सियों से मनुष्य बँधा हुआ है। क्रिया चलती है, क्रिया रूकती है क्रिया सही दिशा में चलती है, हम कर्म के बिना रह ही नहीं सकते। इसलिए श्रीभगवान् कहते हैं, कर्म छोड़कर जो मन से विषयों का चिन्तन कर रहा है, वह मिथ्याचार कर रहा है। दम्भाचार, पाखण्ड है। यदि हम अपने दोष स्वीकार करते हैं तो भगवद्गीता हमें दोषरहित होने के लिए मार्ग प्रशस्त करेगी। परन्तु यदि हम दम्भ कर रहे हैं, दिखावा कर रहे हैं (मनुष्य अपने दोषों को छिपाता है) तो हम मिथ्याचार कर रहे हैं।

3.6

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य, य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा, मिथ्याचारः(स्) स उच्यते॥3.6॥

जो कर्मेन्द्रियों (सम्पूर्ण इन्द्रियों) को (हठपूर्वक) रोककर मन से इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करते हुए बैठता है, वह मूढ़ बुद्धि वाला मनुष्य मिथ्याचारी (मिथ्या आचरण करने वाला) कहा जाता है।

विवेचन- विमूढात्मा- विमूढ़ व्यक्ति
कर्मेन्द्रियाणि संयम्य- कर्मेन्द्रियों को संयमित करता है
मनसा स्मरन् आस्ते- मन से इन्द्रियों का चिन्तन करता है।
मिथ्याचार: स उच्यते- मिथ्याचार करता है।
मिथ्याचार करने से तो हम यह कहें कि भगवन् मैं इससे अधिक प्रवचन नहीं सुन सकता। मुझे कोई दूसरा मार्ग बताइये। यह उचित है परन्तु विवेचन सुनने बैठे और मन कहीं और है तो मिथ्याचार है।

दो शिष्य भगवान् जगन्नाथ जी के दर्शन के लिए गए। मार्ग में नृत्य का कार्यक्रम चल रहा था। एक शिष्य को लगा कि जगन्नाथ

जी के दर्शन बाद में कर लूँगा पहले यह नृत्य देखता हूँ। उसने दूसरे शिष्य से कहा कि तुम चलो मैं बाद में आता हूँ। दूसरा शिष्य चला गया। वह जगन्नाथ जी के दर्शन करता हुआ सोच रहा था कि उसका मित्र अच्छा नृत्य देख रहा होगा। मुझे भी वहीँ रुक जाना चाहिए था। वह वहाँ खड़ा होकर भी नृत्य का चिन्तन कर रहा था जबकि पहला शिष्य नृत्य देखते हुए भी सोच रहा था कि उसका मित्र श्रीभगवान् के दर्शन कर रहा होगा। मैं कहाँ इन विषय में रुक गया। वह नृत्य देखते हुए भी जगन्नाथ जी का चिन्तन कर रहा है।

तत्रात्मा यत्र वै मनः
(हम वहाँ होते हैं जहाँ हमारा मन होता है।)

मन से विषयों का चिन्तन और कर्मेन्द्रियों का संयम मिथ्याचार है।

अर्जुन तुम यह युद्ध छोड़कर चले जाओगे परन्तु ज्ञानयोग की पात्रता तुममे नहीं है। अतः तुम एक स्थान पर बैठोगे तब भी मन से उसका चिन्तन करते रहोगे। तुम ज्ञान के अन्तिम स्थान तक नहीं पहुँच सकते। इसलिए तुम्हें कर्मयोग का ही अनुसरण करना होगा। यही तुम्हारा मार्ग है। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

हे मार्गु तरी दोनी । परि एकवटती निदानीं ।
जैसे सिद्धसाध्यभोजनीं । तृप्ति एक ॥

यह बहुत सुन्दर उदहारण है।
सिद्ध भोजन- रसोई में पका हुआ भोजन
साध्य- सीधा जैसे आटा, चावल, दाल जिसे अभी पकाना है।

दोनों सिद्ध और साध्य से ही हमारी तृप्ति होगी। सिद्ध भोजन तुरन्त हमारी क्षुधा शान्त करेगा। इसी प्रकार ज्ञानयोगी व्यक्ति को तुरन्त ही तृप्ति हो जाएगी परन्तु कर्मयोगी को अपना भोजन स्वयं पकाना पड़ेगा तभी उसकी क्षुधा शान्त होगी। गन्तव्य तो एक ही है परन्तु दोनों का मार्ग भिन्न है। ज्ञान योगियों के पास पकी-पकाई रसोई है। पर इसे उन्होंने ही पिछले जन्म में पकाया है। पिछले जन्म में ही उन्होंने कर्म के मार्ग से जाते हुए अपने ज्ञान का मार्ग प्रशस्त किया है। अतः हे अर्जुन! तुम अभी कर्मयोग के मार्ग पर ही टिके रहो।

3.7

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा, नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः(ख्) कर्मयोगम्, असक्तः(स्) स विशिष्यते॥3.7॥

परन्तु हे अर्जुन! जो (मनुष्य) मन से इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके आसक्ति रहित होकर (निष्काम भाव से) कर्मेंद्रियों (समस्त इन्द्रियों) के द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है।

विवेचन- जो व्यक्ति पहले अपने मन पर नियन्त्रण करते हुए, कर्म करता है, कर्मेन्द्रियों से अनासक्त होकर कर्म का आचरण करता है, वह श्रेष्ठ है।

एक बालक पढ़ने के लिए बैठा है। टेलीविजन पर क्रिकेट का खेल (मैच) चल रहा है। माँ कहती है कि अभी तुम्हें परीक्षा के लिए पढ़ना है। इतने पाठ पढ़ने के बाद ही मैं तुम्हें मैच देखने की अनुमति दूँगी। बालक का मन मैच की ओर लगा हुआ है और पढ़ भी रहा है तो क्या उसके स्मरण में पढ़ाई रह पाएगी? नहीं जाएगी।

work while you work, play while you play,
That's the way to be happy and gay.

तुम यदि काम कर रहे हो तो काम ही करो, खेलने की बात मत सोचो। खेल रहे हो तो खेलने में मन लगाओ पढ़ाई की बात मत सोचो। जहाँ हो, वहीँ की बात सोचो। इसलिए मन का नियन्त्रित करना आवश्यक होता है। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि यदि मन भागता है, कहता है कि मुझे अभी विवेचन नहीं सुनना है, टेलीविजन देखना है तो उसकी बात मान लेनी चाहिए। बालक यदि नहीं मानता है तो उसे थोड़ी देर मैच देखने दो तब उसे कहो कि अब पढ़ने जाओ।

इसलिए ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि मन को साधने से पहले (training) मन की कुछ बातें सुन लेनी चाहिए।

ऐसी युक्ति ची येणी हाथे, इन्द्रियां वोपी जे भाते,
ते सन्तोषे सी वाढते, मन चि करी

मन यदि बिल्कुल नहीं सुन रहा है तो उस पर युक्ति से नियन्त्रण करना। बालक के कहने पर उसे थोड़ी सी चॉकलेट खाने के बाद दाल-चावल खिला दो।

जो व्यक्ति मन नियन्त्रित करता है और कर्मेन्द्रियों से कर्म करता है तो उसके परिणाम उसके मन पर नहीं होते। शरीर कर्मरत होता है परन्तु मन परमात्मा के साथ एकाकार होता है।
इसलिए अर्जुन तुम अपना नियत कर्म करो।

3.8

नियतं(ङ्) कुरु कर्म त्वं(ङ्), कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते, न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥3.8॥

तू शास्त्र विधि से नियत किये हुए कर्तव्य कर्म कर; क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर-निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।

विवेचन- हे अर्जुन तुम अपना कर्म करो क्योंकि कर्म छोड़ने से अधिक कर्म करना उचित है। अकर्मणि होकर तुम अपना जीवन यापन नहीं कर पाओगे। जीवन यापन के लिए कर्म करना आवश्यक है। अतः तुम अपना नियत कर्म करो। जो तुम्हारे लिए निर्धारित किया गया है। जहाँ पर तुमने जन्म लिया, उसके अनुसार तुम्हारे कर्म नियत हैं।

जैसे एक अध्यापक का कर्म पाठशाला में पढ़ाना है, पुस्तक की जाँच करना है। पढ़ाना उसका विहित कर्म है। एक दिन प्रधनाध्यापक आ गए तो उस दिन उनकी सारी पाठशाला दिखाना उस का नियत कर्म हो गया।

सैनिक का विहित कर्म सीमा पर तैनात रहकर देश की रक्षा करना है, व्यायाम करके स्वयं को स्वस्थ रखना है। यदि शत्रु ने हमला बोल दिया तो तुरन्त युद्ध पर जाना उसका नियत कर्म हो गया।

गृहिणी का विहित कर्म गृहकार्य करना है। बड़ों की सेवा करना, सबके लिए रसोई पकाना है। जो प्रतिदिन होता है, वह नियत कर्म हो गया। जैसे कोई अतिथि आ गया तो उसके लिए रसोई पकाना उसका नियत कार्य हो गया।

नियतं(ङ्) कुरु कर्म त्वं(ङ्), कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः

तुम अपने नियत कर्म अवश्य करो। शरीर, मन और बुद्धि के स्तर पर हमारा जो निर्धारित कर्म है, उपजीविका के लिए हमारे जो निर्धारित कर्म हैं, वो सभी कर्म करो।

कल्पना करो कि हमें यातायात के नियम नहीं तोड़ना है, प्लास्टिक इधर-उधर नहीं फेकना है, (गौ माता प्लास्टिक खा-खा कर मर रहीं हैं), वृक्ष लगाने हैं, ये सभी हमारे नियत कर्म हैं। यदि व्यक्ति ये सभी कर्म अपने मनोभाव से करता है तो सृष्टि की

व्यवस्था कितनी भली-भाँति चलेगी। राष्ट्र, समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्त्तव्य निभा रहा है तो सारी व्यवस्था सुचारु रूप से चलेगी।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि नियत कर्म को आह्लादित होकर करना, अन्तरङ्ग के रस के साथ करना, उसमें ही आनन्द लेना।

तो विहित कर्म पांडवा आपुला अनन्य बोलावा
आणि तीच परम सेवा मजं परमात्म्याची।

अपने विहित कर्म को अन्तरङ्ग की प्रसन्नता के साथ करो तो वही परमात्मा की सेवा हो जाती है। कर्म को कर्मयोग में परिणित किया तो वही परमात्मा की पूजा हो जाती है। भगिनी निवेदिता को एक बार किसी ने पूछा कि आप पढ़ा रहीं थीं जब मैं आया था, तो उन्होंने कहा कि मैं पढ़ा नहीं रही थी, मैं तो ईश्वर की पूजा कर रही थी।

यदि कर्म ठीक से न किया जाये तो शरीर यात्रा भी ठीक से नहीं चलेगी। तुम्हारा अभ्युदय नहीं होगा। जीवन में दो बातें प्रमुख हैं -

अभ्युदय
निःश्रेयस्

निःश्रेयस् की प्राप्ति में यदि अपना नियत कर्म छोड़ दिया तो अभ्युदय (भौतिक उन्नति) नहीं मिलेगा और निःश्रेयस् (परम् कल्याण) की प्राप्ति भी नहीं होगी।
यही भगवद्गीता का आग्रह है कि अपना नियत कर्म मन लगाकर करते रहो।

3.9

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र, लोकोऽयं(ङ्) कर्मबन्धनः।
तदर्थं(ङ्) कर्म कौन्तेय, मुक्तसङ्गः(स्) समाचर॥3.9॥

यज्ञ (कर्तव्य पालन) के लिये किये जाने वाले कर्मों से अन्यत्र (अपने लिये किये जाने वाले) कर्मों में लगा हुआ यह मनुष्य समुदाय कर्मों से बँधता है, (इसलिये) हे कुन्तीनन्दन ! तू आसक्ति-रहित होकर उस यज्ञ के लिये (ही) कर्तव्य कर्म कर।

विवेचन- नियत कर्म को श्रीभगवान् यज्ञ के समान बताते हैं। यज्ञ के लिए किए गए कर्म के अतिरिक्त, आसक्ति से जो कर्म करते हैं, वे कर्म मनुष्य को कर्मबन्धन में डालते हैं। अतः हे कौन्तेय! तुम आसक्ति न रखते हुए कर्म करो। उस सृष्टिकर्ता लिए कर्म करो। जैसे हम अग्नि में एक-एक आहुति देते हैं, अग्नि प्रज्वलित करते हैं जो पञ्च महाभूतों के सन्तुलन के लिए, शुद्धि के लिए आवश्यक है। देवताओं के वरदान प्राप्त करने के लिए सारे यज्ञ हमारे वेदों में सकाम आराधना के लिए बताए गए हैं। परन्तु यही यज्ञ नहीं है।

यज्ञ की परिभाषा भगवद्गीता के परिप्रेक्ष्य में समझना आवश्यक है।
इदं न मम, राष्ट्राय स्वाहा

(यह मेरा नहीं है)! इस भाव से अपना कर्त्तव्य कर्म करते रहना चाहिए।

गीता के महायज्ञ में प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी आहुति डाल रहा है। जैसे यज्ञ में अग्नि प्रज्वलित करने से ज्वाला ऊपर उठती है उसी प्रकार यज्ञ कर्म करने से हमारे जीवन का उन्नयन होता है। अतः यज्ञ भावना से किया गया हर कर्म तुम्हें मुक्त कराएगा । यह सारी सृष्टि यज्ञ से ही निर्माण होती है।

सृष्टि के लिए किया गया सङ्गठनात्मक कर्म ही यज्ञ है।

3.10

सहयज्ञाः(फ्) प्रजाः(स्) सृष्ट्वा, पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वम्, एष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥3.10॥

प्रजापति ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदिकाल में कर्तव्य कर्मों के विधान सहित प्रजा (मनुष्य आदि) की रचना करके (उनसे प्रधानतया मनुष्यों से) कहा कि (तुम लोग) इस कर्तव्य के द्वारा सबकी वृद्धि करो (और) यह (कर्तव्य कर्मरूप यज्ञ) तुम लोगों को कर्तव्य-पालन की आवश्यक सामग्री प्रदान करने वाला हो।

विवेचन- प्रजापति ब्रह्मा ने इस सृष्टि का निर्माण यज्ञ के साथ किया। यह परस्पर अवलम्बन का कार्य है। सभी यहाँ पर एक दूसरे पर निर्भर हैं। यज्ञ करके तुम अपना उत्कर्ष प्राप्त करो। इन यज्ञों से तुम्हें अपने इष्ट भोग प्राप्त होंगे। कोई मनुष्य अकेले नहीं चल सकता।

जिस रस्ते पर मैं चलता हूं, वह मैने नहीं बनाया। जिस विद्यालय में मैं पढ़ा, वह मैने नहीं बनाया। जिन ग्रन्थों से मैंने ज्ञान प्राप्त किया, वे मैने नहीं ऋषियों ने निर्माण किए।

यदि कोई कहता है कि "मैं स्वनिर्मित हूँ ("I am selfmade"), तो हँसकर कहना चाहिए, कोई भी स्वनिर्मित (self made) नहीं हो सकता।

TEAM- work together everyone achieves more

T- together
E- everyone
A -achieves
M- more

कोई भी कल्याणकारी कार्य सभी का कल्याण करता है। एक बार एक चर्चा में कहा गया कि सभी के परस्पर अवलम्बन होते हैं तो एक महिला ने कहा कि हम किसी पर निर्भर नहीं हैं। क्योंकि उनके पास बहुत पैसा है (bank balance बहुत बड़ा है)। कोई भी वस्तु चाहिए तो पैसों से खरीद सकते हैं। पैसे से दवाई लाते हैं तो क्या दवाई उन्होंने बनाई है? कारखाने में श्रमिक अत्यन्त श्रम से बनाते हैं। जब बिजली के प्रवाह में विघ्न आता है तब कर्मचारी तपती धूप में भी खम्भे पर चढ़कर उसे सुचारु करते हैं। कितने ही लोगों के सहयोग से बिजली बन रही है।

एक-दूसरे के साथ जुड़कर कार्य करने की यन्त्रणा को ही यज्ञ कहा जाता है। प्रत्येक मनुष्य को इसमें अपनी आहुति देनी चाहिए।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि बड़े बड़े यज्ञ हम नहीं कर सकते तो अपना नित्य कर्म निभाना ही मनुष्य का यज्ञ है।

स्वधर्मु जो बापा। तोचि नित्ययज्ञु जाण पां।
म्हणौनि वर्ततां तेथ पापां, संशय नाहीं।

3.11

देवान्भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं(म्) भावयन्तः(श्), श्रेयः(फ्) परमवाप्स्यथ॥3.11॥

तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा देवताओं को उन्नत करो और वे देवता तुम लोगों को उन्नत करें। इस प्रकार निःस्वार्थ भाव से एक-दूसरे को उन्नत करते हुए तुम लोग परम् कल्याण को प्राप्त हो जाओगे।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि छोटे, बड़ों का सम्मान करेंगे और बड़े, छोटों की रक्षा करेंगे । इस सृष्टि में एक-दूसरे पर निर्भर प्रत्येक व्यक्ति अपना कार्य करेगा तो सभी का श्रेय होगा। तुम यज्ञ में आहुति देकर देवताओं का पूजन करोगे तो देवता

भी प्रसन्न होंगे। तुम देवताओं को उन्नत करो, वो तुम्हारा उन्नयन करेंगे। वर्षा भी समय पर होगी। यदि तुम पेड़-पौधों की रक्षा करोगे, तो प्रदुषण कम होगा। जिस प्रकार सृष्टि का कल्याण होगा तो यह सृष्टि भी तुम्हारा मार्ग प्रशस्त करेगी। सब मिलकर चलें, परस्पर उन्नति करें। यह नहीं कि सीमाओं में बाँधकर दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण करें। इस धर्म का पालन करने वाले को इस सम्प्रदाय में रहने का अधिकार नहीं।

श्रीभगवान् कहते हैं कि तुम यह अधिकार बताने वाले कौन होते हो? परस्पर भाव से कार्य करो और इसी से तुम अपना परम कल्याण प्राप्त कर लोगे। एक-दूसरे की उन्नति की कामना करते हुए जीवन जीना उत्तम है। दूसरों का शोषण करते हुए जीवन नहीं जीना चाहिए।

अपनी भूख मिटाने के लिए खाद्य पदार्थ का सेवन करना मनुष्य की प्रकृति है।
परन्तु मैं अपनी क्षुधा तृप्ति के बाद बचा हुआ भोजन दूसरों को देता हूँ, यह संस्कृति है।
मेरे पास नहीं है और दूसरों से छीनना विकृति है।

जो व्यक्ति मिल-बाँटकर नहीं खाता और केवल स्वार्थ में जीता है, सृष्टि का शोषण करता है, अपनी कमाई स्वयं ही रखेगा और समाज को कुछ नहीं देगा, इस प्रकार के जीवन जीने वाले को श्रीभगवान् **चोर** कहते हैं।

3.12

इष्टान्भोगान्हि वो देवा, दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो, यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥3.12॥

यज्ञ के द्वारा बढ़ाये हुए देवता तुम लोगों को बिना माँगे ही इच्छित भोग निश्चय ही देते रहेंगे। इस प्रकार उन देवताओं के द्वारा दिए हुए भोगों को जो पुरुष उनको बिना दिए स्वयं भोगता है, वह चोर ही है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि यज्ञ के देवता तुम्हें तुम्हारे इष्ट भोगों की प्राप्ति करवा देंगे, पर यदि इन भोगों को मिल-बाँटकर नहीं खाओगे, **तेरा तुझको अर्पण-इस भावना से** नहीं करोगे, तो तुम चोर कहलाओगे। यज्ञ के भोगों को जो स्वयं ही भोगता है, स्वार्थ में जीता है और सृष्टि का शोषण करता है उसके लिए श्रीभगवान् 'स्तेन' शब्द कहते हैं।

म्हणौनि स्वधर्मु जो सांडील । तयातें काळु दंडील ।
चोरु म्हणूनि हरील । सर्वस्व तयांचे ॥

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि ऐसे मनुष्य को काल दण्डित करेगा। उसकी सारी सम्पत्ति, सम्पदा छीनी जाएगी।

इस प्रकार श्रीभगवान् सृष्टि का नियम बताते हुए, अपने कर्म को कर्मयोग में परिणित करते हुए कर्म के ही मार्ग से परमतत्त्व प्राप्त करने का सुन्दर वर्णन करते हैं जिसे अगले सत्र में देखा जाएगा।
साधकों की जिज्ञासाओं के समाधान के साथ आज का सत्र सम्पन्न हुआ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता- श्री शिव कैलाश शर्मा भैया
प्रश्न- इस अध्याय के पाँचवे श्लोक में श्रीभगवान् कहते हैं कि कर्म के बिना कोई नहीं रह सकता, और दूसरे अध्याय के सैंतालीसवें श्लोक में वे कहते हैं कि **कर्मण्येवाधिकारस्ते, मां फलेषु कदाचन**
तो क्या मनुष्य कर्म करने के लिए स्वतन्त्र है या परतन्त्र?
उत्तर- श्रीभगवान् कह रहे हैं कि **कर्मणि एव ते अधिकार: अस्ति।** यहाँ अधिकार का अर्थ है **योग्यता।** केवल कर्म करने में भी तुम्हारी योग्यता है उसके फल पर नहीं क्योंकि फल मिलना बहुत सी बातों पर निर्भर करता है जो हमारे वश में नहीं हैं। यहाँ श्रीभगवान् का एक और अभिप्राय है कि अर्जुन की योग्यता अभी केवल कर्म करने की है, ज्ञान प्राप्त करने की नहीं।

मनुष्य एक क्षण के लिए भी कर्म छोड़कर नहीं रह सकता, क्योंकि ऐसा करने से मन क्रियाशील हो जाता है और विभिन्न विषयों से वह मलीन और बोझिल हो कर अपनी सृजनशीलता को बैठता है।
इसलिए श्रीभगवान् यहाँ कर्म की प्रशंसा करते हैं और उसे मानते हैं। हमारे शरीर की सारी क्रियाएँ श्रीभगवान् की कृपा से ही सम्भव हैं यह हमें मानना चाहिए परन्तु फिर भी हम कर्म करने के लिए स्वतन्त्र हैं अन्यथा श्रीकृष्ण अन्त में अर्जुन से नहीं कहते- "**यथेच्छसि तथा कुरु**"
मैंने तो तुम्हें सब कुछ बता दिया है कि क्या सही है और क्या गलत? अब तुम अपनी विवेक बुद्धि से निर्णय लो। विवेक बुद्धि से निर्णय लेने की क्षमता केवल मनुष्य में ही होती है।

प्रश्नकर्ता- श्रीमती नन्दिनी मिश्रा दीदी
प्रश्न- इस अध्याय के सातवें श्लोक में **यस्त्विन्द्रियाणि मनसा** इसका अर्थ स्पष्ट करें।
उत्तर- हमें अपनी ज्ञानेंद्रियों (आँख, कान,नाक, जिह्वा और स्पर्श) को वश में करना सीखना चाहिए। हमें मीठा बहुत अच्छा लगता है परन्तु हमें शक्कर की बीमारी है तो हमें अपनी जिव्हा पर नियन्त्रण करना आना चाहिए। मन को इस प्रकार सम्बल देना चाहिए कि वह इन्द्रियों को वश में कर सकें। यदि मन इन्द्रियों के वश में होगा तो हम बड़े बड़े काम नहीं कर सकते। जो मन से इन्द्रियों को वश में कर अपने कर्त्तव्य कर्म करते हैं ऐसे मनुष्य श्रेष्ठ कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता- श्री उमाकान्त मिश्रा भैया
प्रश्न- श्लोक, मन्त्र और स्तोत्र में क्या अन्तर है?
उत्तर- स्तोत्र का अर्थ है स्तुति करना जैसे गणपति अथर्व शीर्ष, श्री विष्णु सहस्रनाम आदि जिनमें देवताओं की स्तुति की जाती है।
इन स्तोत्रों के रचनाकार ऋषि मुनियों ने तरङ्गों के माध्यम से आए परमात्मा के ज्ञान को संस्कृत भाषा में ग्रन्थों के रूप में शाश्वत सिद्धान्त बनाकर प्रस्तुत किया है। यही शाश्वत सिद्धान्त **मन्त्र** कहलाते हैं। हजारों वर्षों बाद भी उनमें परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं होती। **मननात् त्रायते इति मन्त्र: अर्थात्** जिनको सुनकर मन में जाता है वह मन्त्र है। संस्कृत भाषा मान्त्र भाषा है। यदि मन्त्र समझ में नहीं भी आएं तो भी उनका प्रभाव हमारे मन पर होता है। श्रीमद्भगवद्गीता भी ऐसा ही मन्त्र है जिसका ज्ञान पाँच हजार वर्षों बाद आज भी शाश्वत है।

मन्त्रों की छन्द और अलङ्कार में बाँधकर काव्यात्मक प्रस्तुति **श्लोक** कहलाती है। मराठी भाषा में इसे **ओवी** कहते हैं जैसे ज्ञानेश्वर महाराज की ज्ञानेश्वरी।

प्रश्नकर्ता- श्रीमती रम्या दीदी
प्रश्न- यदि विवेचन सुनते हुए हम कोई काम करते हैं तो क्या यह **मिथ्याचार** होगा?
उत्तर- नहीं,यह तो नित्य कर्म या यज्ञ हो गया। मन विवेचन पर केन्द्रित है और हम कर्मेन्द्रियों से अपने कार्य कर रहे हैं इसका अर्थ है हम अपनी इन्द्रियों के वश में नहीं हैं। इस प्रकार कोई भी काम करते हुए परमात्मा की पूजा कर सकते हैं। हाँ, यदि हम विवेचन सुन तो रहे हैं लेकिन हमारा मन कहीं और भटक रहा है तो यह मिथ्याचार कहलाएगा।

ॐकृष्णार्पणमस्तु

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||